तुलसी के काव्य में आर्थिक चिंतन

सतीश सिंह

प्रभु श्रीराम की जीवनयात्रा आमजन के बीच सौहार्द्र, रिश्तों के बीच समन्वय लाने और मानव कल्याण को सुनिश्चित करने की प्रेरणा देती है। श्रीराम न्याय, बंधुत्व और समानता के सिद्धांत को मूर्त रूप देने के लिए हमें उत्प्रेरित करते हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी चाहते थे कि देश में रामराज कायम हो, क्योंकि राम राज्य एक आदर्श राज्य की परिकल्पना है, जहां चोरी-चकारी, भ्रष्टाचार, माया, लालच, ईर्ष्या आदि अवगुणों का अभाव है।

रामचरितमानस के स्रोत वेद, शास्त्र, पुराण, वाल्मीकि रामायण आदि हैं, लेकिन यह किसी भी ग्रंथ से प्रभावित नहीं है। तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का वर्णन रामचरितमानस में सांगोपांग किया है, जो काव्य की शक्ल में है। रामचरितमानस अपनी प्रबंधात्मकता, मार्मिक प्रसंग, चारित्रिक महानता, सांस्कृतिक गरिमा, सहज-सरस संवाद, नीति, अर्थ, भाव-प्रवाह, अलंकारिता आदि से युक्त होने के कारण एक अमर कृति है।

मानव उत्पत्ति के पश्चात, जब मानव ने स्थायी रूप से रहना सीख लिया, तभी से किसी-न किसी रूप में अर्थ प्रबंधन किया जा रहा है। चूंकि, लेखक या कवि भी समाज के अभिन्न अंग होते हैं। इसलिए, उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मानव के आर्थिक जीवन की चर्चा की जाती रही है। मानव में कई गुण और अवगुण अंतर्निहित हैं, जिनका उल्लेख रचनाकार अपनी रचनाओं में करते रहे हैं। मानवीय गुण-अवगुण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ प्रबंधन को प्रभावित करते हैं।

अर्थ प्रबंधन से तात्पर्य है, लोगों की जरूरतों और इच्छाओं को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के निजी, सार्वजनिक या समूहिक संसाधनों का कुशल एवं प्रभावी उपयोग। यह तभी संभव हो सकता है, जब लोग अपने जीवन में अनुशासन बनाए रखें और इच्छाओं पर नियंत्रण रखें। साथ ही, लोभ, दंभ, ईर्ष्या आदि बुराइयों से निरंतर बचते बचें। इस नजरिए से देखा जाये तो गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस तथा अन्य रचनाओं में बहुत कुछ ऐसा मिलता है, जो भारतीय लोक की आर्थिक प्रज्ञा को समृद्ध करने में सहायक है।

तुलसी का युग

गोस्वामी तुलसीदास के युग में सामाजिक-आर्थिक विषमता के साथ-साथ सामंतशाही मानसिकता हर ओर दृष्टिगत होती थी। समाज में जातिभेद और छूआछूत का माहौल था। अमीर एवं गरीब या फिर राजा और रंक के बीच एक बड़ी खाई व्याप्त थी। गरीबों का कोई तारणहार नहीं था। सामाजिक और राजनीतिक तंत्र मजबूत नहीं थे। समाज में निराशा का माहौल था। तुलसीदास तत्कालीन युग को जी रहे थे। इसलिए, उनकी रचना में तत्कालीन कालखंड की झलक देखने को मिलती है, लेकिन तुलसीदास ने प्रभु श्रीराम के

परिप्रेक्ष्य में एक आदर्श राज्य की परिकल्पना की है, जिनकी झलक उनकी चौपाइयों में देखने को मिलती है।

अपनी रचनाओं में तुलसीदास प्रभु श्रीराम को लोक से जोड़ते हैं और सामाजिक व आर्थिक पहलुओं की चर्चा अपनी चौपाईयों में करते हैं। रामचरितमानस की रचना 16वीं शताब्दी में की गई थी। बावजूद इसके, इस ग्रंथ की कई चौपाइयों की प्रासंगकिता आज भी बनी हुई है। तुलसीदास द्वारा लिखित चौपाई राजा और जनता के बीच सेतु का काम करती है, क्योंकि अपनी चौपाइयों में तुलसीदास प्रभु राम को सहृदय, सरस और सहज दर्शाते हैं। प्रभु राम इतने सहज हैं कि आमजन के साथ घुलमिल जाते हैं, उनके साथ खड़े रहते हैं, उनके सुख-दुख: में शामिल होते हैं।

तुलसी की आर्थिक दृष्टि

तुलसी ने सबसे बड़ा दुख दरिद्रता को माना है। कवितावली में उन्होंने दरिद्रता की तुलना रावण से करते हुए लिखा है - दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबन्धु। यानी कि दरिद्रता रावण की तरह है, जिसे कितना भी दबाओ वो फिर से उठकर खड़ी हो जाती है। रावण के दस सिर थे, जिन्हें कितना भी काटो वो ख़त्म नहीं होते थे। यही प्रतीक तुलसीदास ने दरिद्रता को भी दिया है। उन्होंने स्वयं दरिद्रता का दुख झेला था, इसलिए इसकी पीड़ा समझते थे। दरिद्रता का यह अनुभव ही उन्हें अपनी रचनाओं में आर्थिक प्रबंधन से संबंधित महत्वपूर्ण सूक्तियाँ डालने को प्रेरित करता था। इस दरिद्रता से मुक्ति का भाव लेकर ही उन्होंने श्रीराम को 'ग़रीब नेवाज' लिखा है-

गई बहोर गरीब नेवाज़ू।

सरल सबल साहिब रघुराज़ू।।

रामचरितमानस में ही एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं :

"जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं।

सुख संपत्ति नाना विधि पावहिं।।"

अर्थात जो व्यक्ति श्रद्धा भाव से उपरोक्त चौपाई का पाठ करता है या सुनता है उसे सुख और संपत्ति की प्राप्ति होती है। यह दर्शाता है कि जीवन को बेहतर या खुशहाल बनाने में संपत्ति की अहम भूमिका होती है।

यहाँ संपत्ति प्राप्ति की बात का होना तुलसी की दृष्टि में आर्थिक संपदा के महत्व को दर्शाता है। वे यह संपत्ति अपने युग के उस समाज के लिए चाहते थे, जो दरिद्रता के कारण दीन और दुखी हो रहा था। शोषण के कारण लोग भूखों मरने की स्थिति में पहुँचे हुए थे। कवितावली में तुलसीदास ने इस स्थिति का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है :

किसबी, किसान-कुल बनिक, भिखारी, भाट

चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।

पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरी,

अटत गहन-गन अहन अखेट की॥

ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,

पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।

'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,

आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेट की॥

इस छंद में तुलसी ने अपने युग की सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है, जिसमें किसान-व्यापारी, भिखारी सब धर्म-अधर्म भूलकर केवल पेट की अग्नि को शांत करने के लिए कर्म कर रहे हैं। अंतिम पंक्ति में तुलसी ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि सबसे बड़ी आग पेट की होती है, जिससे उनके युग का समाज त्रस्त था। यह छंद तुलसी की संवेदना में निहित आर्थिक अभाव के बोध को ध्वनित करता है। तुलसीदास जीवन में आजीविका के महत्व को अनेक स्थानों पर इंगित करते हैं। इन स्थितियों से मुक्ति का भाव उनकी रामकथा में सर्वत्र आता रहता है।

"बिस्व भरन पोषण का जोई।

ताकर नाम भरत अस होई॥"

यह भरत के नामकरण का प्रसंग है। लेकिन इस चौपाई की प्रथम अर्धाली में विश्व के भरण-पोषण की बात है, जो तुलसी की आर्थिक दृष्टि को दर्शाती है।

जीवन में सर्वदा खुशहाली नहीं रहती है। उतार-चढ़ाव आता रहता है। सुख-शांति के साथ-साथ कभी-कभार जीवन में विपत्ति भी आती है, लेकिन नकारात्मक स्थिति रहने पर भी इंसान को घबराना नहीं चाहिए। अपितु सोच को सकारात्मक रखते हुए कार्य करना चाहिए। सकारात्मक व्यक्ति के जीवन में ही संपत्ति का वास होता है, नकारात्मकता तो केवल विपत्ति लाती है। तुलसीदास कहते हैं -

"जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।

जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।"

सुंदरकांड की यह चौपाई आज भारतीय लोक के लिए एक मंत्र बन चुकी है। सामान्य और अशिक्षित जन भी जब-तब उदाहरण की तरह कहते रहते हैं।

किसी भी काम को करने के लिए शरीर का निरोग रहना जरूरी है। निरोग व्यक्ति ही सुख-समृद्धि हासिल कर सकता है। इसलिए, स्वस्थ शरीर को "हेल्थ इज वेल्थ" की संज्ञा दी गई है। इसीलिए तुलसीदास के रामराज्य में किसी प्रकार के रोग के लिए कोई स्थान नहीं है -

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।

रोग आदि व्यक्ति की आर्थिक वृद्धि में बड़ी बाधा होते हैं। अनेक बार आदमी की कुल जमापूँजी बीमारी के इलाज में लग जाती है। तुलसीदास इस तथ्य को समझते थे। इसीलिए उन्होंने पहले यह स्पष्ट किया कि रामराज्य में कोई रोग नहीं होता, फिर लिखा कि -

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।

नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।

हर व्यक्ति जीवन में किसी न किसी समस्या का सामना करता है। कभी आर्थिक तो कभी सामाजिक तो कभी धार्मिक। समस्याओं के कारण व्यक्ति के जीवन में स्थिरता और सुख का अभाव रहता है। वह सर्वदा बेचैन रहता है। हालांकि, इन कठिन परिस्थितियों में भी कर्मठता बनाए रखते हुए प्रयास करके मुश्किलों को दूर किया जा सकता है। तुलसीदास लिखते हैं -

"करम प्रधान बिस्व करि राखा।

जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।"

भावार्थ यह है कि अपनी परिस्थितियों को लेकर रोने-बिलखने के बजाय परिश्रम से कर्म करके अपनी दशा को बदलने का प्रयास करना ही उचित मार्ग है। विश्व का यही नियम है कि जो जैसा कर्म करेगा वो वैसा फल पाएगा। लेकिन जो कर्म ही नहीं करेगा, उसे भला क्या मिल सकता है?

तुलसीदास आर्थिक अभाव की पूर्ति के लिए संपत्ति के महत्व की बात अवश्य करते हैं, किंतु इस क्रम में वो जिन दो बातों को सर्वाधिक प्रमुखता से रखते हैं, वो आर्थिक अर्जन की अंतहीन दौड़ में लगे वर्तमान समाज के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। वे दो बातें हैं - लोभ का त्याग और संतोष का वरण। तुलसी की आर्थिक दृष्टि के मूल में लोभ का त्याग और संतोष का वरण रहा है। रामचरितमानस में ही उन्होंने लोभ की बारंबार निंदा की है।असंतों का स्वभाव बताते हुए वे लिखते हैं -

"काम क्रोध मद लोभ परायन।

निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।"

"काम, क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।"

“लोभी लंपट लोलुपचारा।

जे ताकहिं परधनु परदारा।।”

इसके विपरीत संतोष-वृत्ति की बात आते ही तुलसी गद्‌गद हो उठते हैं -

“सरल सुभाव न मन कुटिलाई।

जथा लाभ संतोष सदाई।।”

“कोउ बिश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।”

“सुख संतोष बिराग बिबेका।

बिगत सोक ए कोक अनेका।।”

नवधा भक्ति का वर्णन करते हुए भी वे संतोष-वृत्ति के महत्त्व की बात करने से नहीं चूकते -

आठवँ जथालाभ संतोषा।

सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।

स्पष्ट है कि गोस्वामी जी के आर्थिक दर्शन का मूलाधार संतोष पर टिका हुआ है। वे अभाव को दूर करने के लिए संपत्ति अर्जन की बात करते हैं, किंतु संपत्ति के पीछे जीवन की सुख-शांति गँवा देने के पक्षधर नहीं हैं। तुलसी के अनुसार, आवश्यकता भर की संपत्ति में संतोष के साथ जीना ही श्रेष्ठ और सुखी जीवन का मार्ग है।

दुनिया में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिससे कोई ईर्ष्या नहीं करता है या उसके प्रति नकारात्मक विचार मन में नहीं रखता है। ईर्ष्या का भाव न केवल व्यक्ति को दुखी करता है, बल्कि उसके विकास को भी रोकता है। इसलिए तुलसीदास ने ईर्ष्या की जहां-तहाँ निंदा की है और रामराज्य में ईर्ष्या-द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं रखा है -

“बयरु न कर काहू सन कोई।

राम प्रताप विषमता खोई॥“

दुनिया में सफल होने के लिए या फिर सुचारु रूप से जीवकोपार्जन करने के लिए शिक्षित होना जरूरी है। शिक्षा या ज्ञान ही किसी भी व्यक्ति को जीवन में सफल बना सकता है या आर्थिक रूप से सबल बना सकता है। इसलिए, शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है

“गुरु गृह गए पढ़न रघुराई।

अलपकाल विधा सब आई॥“

रामचरितमानस, ज्ञानियों की ज्ञान पिपासा को शांत करने, मनुष्यों को प्रसन्न करने और गलत कार्यों पर लगाम लगाने के लिए सकारात्मक माहौल का निर्माण करता है, जिसकी मदद से इंसान एक बेहतर ज़िंदगी यानी सुख-समृद्धि से युक्त जीवन जी सकता है।

"बुध बिश्राम सकल जन रंजनि।

रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥

रामकथा कलि पनंग भरनी।

पुनि बिबेक पावक कहूँ अरनी॥"

"भरतहि होई न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाई" पद में भरत ईमानदारी और सज्जनता की अद्‌भुत मिसाल पेश करते हैं, जो किसी भी कारोबार की सफलता के लिए प्राथमिक शर्त होती है।

जिस तरह फलों के बोझ से पेड़ झुक जाता है, विनम्र हो जाता है, उसी तरह सुख-संपत्ति से समृद्ध व्यक्ति भी परोपकारी पेड़ की तरह गरीब एवं जरुरतमन्द की मदद करके खुशी पाता है।

"फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराई।

पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपत्ति पाई॥"

प्रीति और विरोध दोनों समान स्तर वाले व्यक्ति से करना चाहिए। शेर द्वारा मेढक को मारना सही नहीं है अर्थात कारोबारी साझीदार समकक्ष या बराबर वाले व्यक्ति को बनाना चाहिए, ताकि कारोबार में बढ़ोतरी हो सके।

"प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।

जौ मृगपति बध मेड़ुकनहिं भल कि कहई काऊ ताहि॥"

किसी भी देश और समाज की उन्नति में वहाँ की कर नीति का महत्वपूर्ण स्थान होता है। किसी राज्य-व्यवस्था की कर नीति से देश और देशवासियों दोनों का ही विकास जुड़ा होता है। तुलसीदास के युग में प्रजा पर शासक वर्ग द्वारा मनमाने कर लगाकर शोषण किया जा रहा था। तुलसीदास इस तथ्य को भली प्रकार समझते थे। परिणामतः उनके आर्थिक चिंतन में आदर्श कर नीति का कुछ ऐसा रूप निकलकर आता है -

"बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।

तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सम होइ।"

तुलसीदास ने कर-संग्रह के लिए सूर्य का उदाहरण लिया है। सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी से थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे जल खींच लेता है और किसी को पता नहीं चलता, किन्तु उसी जल को बादल के रूप में इकट्ठा कर वर्षा में बरसते देखकर सभी लोग प्रसन्न होते हैं। इसी रीति से कर-संग्रह करके राजा द्वारा जनता के हित में कार्य करना चाहिए।

इसी क्रम में परिवार के मुखिया से लेकर राष्ट्र के मुखिया यानी राजा/नेता को अपने आश्रितों के प्रति किस प्रकार का आर्थिक व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में भी तुलसीदास ने बहुत सुंदर नीति बताई है। रामचरितमानस में स्वयं श्रीराम से ही उन्होंने कहलवाया है कि -

"मुखिआ मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।

पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक॥"

भावार्थ यह है कि घर से लेकर देश तक के मुखिया को मुंह के समान होना चाहिए। मुंह खाने-पीने का काम अकेला करता है, लेकिन यह जो खाता पीता है उससे शरीर के सारे अगों का पालन-पोषण होता है। तुलसी की राय में मुखिया को भी ऐसे ही होना चाहिए कि वह परिवार या देश के लोगों के ज़रिए जो भी संपत्ति प्राप्त करे, उसे इस प्रकार से इस्तेमाल करे कि उसका लाभ सभी को ठीक प्रकार से मिले तथा सभी के विकास में सहायक हो।

कहा जा सकता है कि तुलसीदास भले ही एक भक्त कवि थे और अपनी कृतियों में उन्होंने भले ही प्रभु श्रीराम का गुण-कीर्तन किया है, एक आदर्श व्यक्ति और एक आदर्श राज्य की परिकल्पना की गई है, लेकिन इसके साथ-साथ तुलसीदास ने तत्कालीन युग की विषमताओं, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक पहलुओं पर भी रोशनी डाली है, जो कि आज भी महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1 - रामचरितमानस, तुलसीदास

2 - कवितावली, तुलसीदास

सतीश सिंह

अहमदाबाद, सहायक महाप्रबंधक (ज्ञानार्जन एवं विकास)

भारतीय स्टेट बैंक